Appendix - 1

परिशिष्ट - १

—: जैन धर्मके पारिभाषिक शब्द :—

१ **अठारह दोष**— "अन्तरायदान लाभवीर्य भोगोपभोगा । हासो रत्यारतिभीतिर्जुगुप्सा "क एवच ।।
(कामोमिथ्यात्वमज्ञान निद्रा) चाविरतिस्तथा । रागोद्वेषश्चनो दोषास्तेषामष्टा—दशाप्यमी ।।"
(अभिधान चिंतामणी का-१ श्लो ७२-७३) इन अठारह दोषोके सपूर्ण क्षय होने पर ही सर्वज्ञता प्राप्त होती है ।

२ **अनशन**— सर्वथा सर्व प्रकारके आहार—पानीका त्याग

३ **अशाता वेदनीयकर्म**— जिस कर्मके उदयसे जीवको दु खका अनुभव होता है ।

४ **अष्ट प्रवचन माता**— पाच समिति (इर्या, भाषा, एषणा, आदान भड-मत्त-निक्षेपणा पारिष्ठापनिका) और तीन गुप्ति मन-वचन-काया)— इन आठका पालन करना जैन साधुके लिए अनिवार्य है । जैसे माता बालककी पुष्टि करती है वैसे ही ये आठ साधुके आत्माकी पुष्टिमे सहायक होनेसे उन्हे माताके रूपमे स्वीकारा गया है ।

५ **अष्ट प्रातिहार्य + चार मूलातिशय = अरिहंतके बारह गुण**— "प्रतिहारा इन्द्र वचनानुसारिणो देवास्तै कृतानि प्रातिहार्यानि"- इन्द्रके आदेशका अनुसरण करनेवाले देव 'प्रतिहार'— उनका भक्तिरूप कृत्य-विशेष, प्रातिहार्य कहा जाता है. अथवा अरिहतके निरतर सहचारी होनेसे प्रातिहार्य— "किंकिल्लि, कुसुमवृट्ठि, देवधुणि, चामरासणाइ च । भावलय भेरिं छत जयति जिणपाडि हेराइ ।।"(अशोक वृक्ष, सुरपुष्पवृष्टि दिव्यध्वनि, चामर, भद्रासन, भामडल, देव-दुदुभिनाद, तीन छत्र,— आठ, मूलातिशय—अपायापगम, ज्ञानातिशय वचनातिशय पूजातिशय चार—ये बारह गुण

६ **आर्यक्षेत्र**— जिस क्षेत्रमे धर्माराधना और आत्माके सर्व कर्मक्षयकी साधनाके साधन प्राप्य हो सकते है । जीव मोक्ष प्राप्ति हेतु पुरुषार्थ करके मोक्षकी उपलब्धि कर सकता है ।

७ **एकेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय**— सर्व जीवोको इन पाच भेदोमे विभक्त किये है— एकेन्द्रिय पाच प्रकारके (पृथ्वी-अप तेउ-वायु- वनस्पति)— केवल स्पर्शेन्द्रियवाले होते हैं । द्वीन्द्रियको चमडी और जिव्हा—दो इन्द्रिय, तेइन्द्रियको- उनसे नाक (इन्द्रिय) अधिक, चौरिन्द्रियको आख (इन्द्रियं) अधिक (इन तीनोको विकलेन्द्रिय भी कहते है ।) पाचो इन्द्रिय वाले चारो गतिके जीव—

८ **कल्पवृक्ष**— श्री रत्नशेखर सूरि कृत 'लघुक्षेत्र समास' प्रकरणाधारित (श्लोक-९६-९७) दस होते है । जो युगलिक मनुष्योकी सर्व इच्छा-पूर्ति करते है । ये देवाधिष्ठित होते है ।(१) मत्तग (मद्यग)—मीठा पेय दाता, (२) भृत्तग—पात्र-बर्तनादि दाता (३) तत्तु-पट-वायु—तीन प्रकारके वाजित्र युक्त बत्तीस प्रकारके नाटक दिखलानेवाले (४) दीप-शिखा और (५) ज्योतिरग—दोनो प्रकाश दाता, (६) चित्राग—पचवर्णी सर्व प्रकारके पुष्पदाता (७) चित्ररस—विभिन्न षड्रस युक्त इष्टान्न-मिष्टान्न दाता (८) म ण्यग—इच्छित अलकार दाता (९) गेहाकार—गाधर्व नगर जैसे सुदर गृह दाता (१०) अनग्न—अभिप्सित आसन शय्यादि दाता—इनका अस्तित्व अवसर्पिणीके प्रथम तीन और उत्सर्पिणीके अतिम तीन आरेमे होता है ।

९ **कार्योत्सर्ग**— कर्मनिर्जरा—आत्मा या परमात्मा स्वरूप चितनादिके लिए व्यक्तिकी स्थिर मुद्रा ।

१० **कालचक्र**— अनादि-अनत ससारको समझने-समझानेका माध्यम, अनागतको वर्तमान और वर्तमानको अतीत बनानेके स्वभाववाला जो काल—जिसका सूक्ष्मातिसूक्ष्म (जिसको सर्वज्ञ भगवत भी केवल ज्ञान दृष्टिमे अविभाज्य रूपमे देखते है) एकम समय है । असख्य समय = १ आवलिका, १६७७७२१६ आवलिका = १ अतर्मुहूर्त, ३० अतर्मुहूर्त = १ दिन, ३६.५ दिन = १ वर्ष, ८४ लाख वर्ष = १ पूर्वाग, ८४ लाख पूर्वाग = १ पूर्व, असख्य वर्ष= १ पल्योपम, १० कोडाकोडी पल्योपम = १ सागरोपम, १० कोडाकोडी सागरोपम = १ उत्सर्पिणी अथवा १ अवसर्पिणी काल-वे दोनो मिलकर १ कालचक्र (इस कालचक्रके १२ आरोका स्वरूप चित्रमे देख । पल्योपम और सागरोपमका विशेष स्वरूप वृहत् सग्रहणी, चद्र प्रज्ञप्ति, सूर्य प्रज्ञप्ति, ज्योतिष्करडकादि जैन शास्त्रोसे ज्ञातव्य है।)

११ **कालधर्म**— जीवकी मृत्यु—एक जन्मसे दूसरे जन्मकी प्राप्ति (विशेष रूपमे साधु-साध्वीके मृत्युके लिए इसका प्रयोग किया जाता है ।)

१२ **केवलदर्शन--१३. केवलज्ञान**— दर्शनावरणीय और ज्ञानावरणीय कर्मो सपूर्ण क्षय होने पर, उपलक्षणसे चार घातीकर्मक्षय होने पर लोकालोकके स्वरूपको प्रकाशित करनेवाला, त्रिकालवर्ती–त्रिकालाबाधित, सर्व द्रव्योंको-सर्व पर्यायोको एक समयमे सर्वांग-सपूर्ण रूप से ज्ञात करानेवाला, अक्रमिक, देश-कालकी परिच्छिन्नता रहित, मन-वचन-काय योगसे अगम्य-अगोचर, पदार्थको आत्मज्ञानसे स्वय प्रतिबिम्बित नेवाला, परम ज्योति स्वरूप, सादि-अनत स्थितिवाला, नित्य, प्रामाणिक ज्ञानको ही केवलज्ञान कहते है । उसी रूपमे होनेवाले दर्शनको केवल दर्शन कहते हैं।

१४ **क्षपकश्रेणि**— सर्व घाती कर्मक्षय हेतु, आत्माकी विशिष्ट भाव दशा-ध्यान दशा-अप्रमत्त भाव की केवल ज्ञान प्राप्ति पर्यंत श्रेणि

१५ **गणधर**— एक शिष्य समुदाय जिस गुरुके पास ज्ञान-शिक्षा-सस्कारादि प्राप्त करता है उस समुदायको धारण करनेवाला व्यक्ति-गुरु-गणधर कहलाता है । अथवा तीर्थकरके प्रमुख (त्रिपदीसे द्वादशागीके रचयिता) शिष्य गणधर कहलाते हैं।

१६ **चार अघाती—१७. चार घाती कर्म**–जो आत्माके मूल गुणोका घात नही करते है, लेकिन केवल-ज्ञान प्राप्तिके पश्चात् भी परिनिर्वाण-मोक्ष तक आत्माका साथ निभाते हैं।वे चार है-वेदनीय कर्म, नामकर्म, गोत्रकर्म, आयुष्यकर्म। जो आत्माके चार मूल गुण-ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अव्याबाधता–के आवरक या घात करनेवाले चार घातीकर्म (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, मोहनीय, अतराय) हैं । जो केवलज्ञान-केवलदर्शनकी उपलब्धि नही होने देते । (विशेष स्वरूप कर्मग्रन्थ, कम्मपयडी, पचसग्रह आदिसे जान सकते है ।)

१८ **चार अनुयोग**—सकल जैन श्रुतज्ञान (आगमज्ञान) चार अनुयोगमे समाहित किया गया है । पूर्वकालमे एक ही सूत्रमे स्थित चारो अनुयोगोको उन्नीसवे युगप्रधान-साडेनव पूर्वधर श्री आर्यरक्षित सूरिजीम द्वारा भावि विद्वद्वर्ग एव अपने शिष्य श्री विंध्यमुनिकी अध्ययन सरलताके कारण भिन्न भिन्न चार अनुयोगोमे विभाजित किया गया । यहा अनुयोग अर्थात् व्याख्यान अथवा शास्त्र-सिद्धान्त बोधके लिए अनुकूल ज्ञान व्यापार । द्रव्यानुयोग – जिसमे विश्वके-चौदह राजलोकके-द्रव्य (पदार्थों) और पर्यायोंका सपूर्ण स्वरूप निहित है. चरणकरणानुयोग – जिसमे साधु-साध्वी, उपलक्षणसे श्रावक-श्राविका (गृहस्थ)के आत्म स्वरूप प्राप्तिके लिए आचरण योग्य क्रियाये, रत्नत्रयीरूप-दर्शन,ज्ञान-चारित्रके स्वरूपादिका निरूपण है. गणितानुयोग – जिसमे ज्योतिष्क, भूस्तर शास्त्र, खगोल, विज्ञान, अकादि गाणितिक विषयोका आलेखन हैं. धर्मकथानुयोग – जिसमे विविध सैद्धान्तिक विषयोको-समस्याओको-धर्माचरणोंको कथानको द्वारा सरल स्वरूपसे समझाया जाता है ।

१९. **चौंतीस अतिशय**— श्री अरिहतके जीवको सर्वोत्कृष्ट पुण्यके कारण ऐसे विशिष्ट गुणोकी सप्राप्ति होती है, जो सुख अन्य कोई भी जीवोंको उपलब्ध नही होता है । जिनमे चार अतिशय जन्मसे ही प्राप्त होते हैं, चार घातीकर्म क्षयसे ग्यारह अतिशय–प्राकृतिक अनुकूलताये-प्रसन्नताये आदिके रूपमे और उन्नीस अतिशय–देवकृत होते है (विशेष स्वरूप त्रिषष्ठी शलाका पुरुषादि ग्रन्थोसे ज्ञातव्य है ।)

२०. **चौदह महास्वप्न**— बहत्तर प्रकारके स्वप्नमेसे प्रमुख चौदह स्वप्नोको महास्वप्न कहा जाता है । स्वप्नशास्त्रानुसार चक्रवर्ती अथवा तीर्थकरोका माताकी कुक्षिमे अवतरण होता है, तब अर्धरात्रिमे तीर्थंकरोकी माता स्पष्टरूपसे और चक्रवर्तीकी माता धूधले स्वप्न निरख कर जागृत होती है । वे चौदह स्वप्न है– गजवर, वृषभ, केसरीसिंह, लक्ष्मीदेवी, पुष्पमालायुगल, चद्र, सूर्य, ध्वजा, पूर्णकलश, पद्मसरोवर, रत्नाकर, देवविमान, रत्नराशि, निर्धूम अग्नि (विशेष स्वरूपके लिए देखिये कल्पसूत्र आदि जैन ग्रन्थ)

२१ **छद्मस्थ**— प्रत्येक जीवकी केवलज्ञान प्राप्तिकी पूर्वावस्था-जब जीवमे अपूर्णता-अज्ञानता होती है ।

२२. **जंबूद्वीप**— चौदह राजलोकमे तिर्च्छा लोककी मध्यका प्रथम द्वीप (विशेष परिचय चित्रमे–)

२३ **जाति स्मरण ज्ञान**— व्यक्तिको होनेवाला ऐसा ज्ञान, जिसके माध्यमसे पूर्व जन्मोकी प्राय नव भव पर्यंतकी स्मृति हो-ज्ञान हो

२४. **जीवयोनि**— योनिकी शास्त्रीय परिभाषा है–कर्माधीन आत्मा तैजस-कार्मण शरीर नामक नामकर्मके कारण उन कर्मफल भोगनेके लिए आत्मा द्वारा औदारिक वैक्रियादि शरीर नामक नामकर्म योग्य पुद्गल स्कन्धोके समुदायका जहा मिश्रण होता है (जिसे जीवका जन्म कहते हैं) उस मिश्रण-स्थानको योनि कहा जाता है । योनि ८४ लक्ष हैं ।

२५. **ढाईद्वीप**— चौदह राजलोकमें तिर्च्छालोकके मध्यके जबूद्वीपकी चारो ओर एक समुद्र-एक द्वीप-इस प्रकार असख्य द्वीप-समुद्र हैं । उनमें प्रथमके ढाई द्वीप चित्र परिचयसे ज्ञातव्य हैं । इसे ही मनुष्यलोक भी कहते हैं ।

२६. **तीर्थंकर नामकर्म**— कर्मके आठभेदमे षष्ठम-नामकर्मके उपभे दस प्रत्येक प्रकृतिमे समाहित है ।

२७. **त्रिकरण-त्रियोग—(त्रिविध-त्रिविध)**— त्रियोग (मन-वचन-काया)से 'करण-करावण-अनुमोदन'रूप त्रिकरण (करना, करवाना, अनुमोदनारूप) त्रिविध त्रिविध स्वरूपसे कोई भी कार्य करना ।

२८. **त्रिपदी**— 'उप्पनेइवा', 'विगमेइवा', 'धुवेइवा'— तीर्थंकर भ केवलज्ञान पश्चात् प्रथम देशना (प्रवचन) देते है, जिससे प्रतिबोधित गणधर योग्य प्रथम शिष्य द्वादशागीकी रचना इस तीन पदाधारित करते है ।

२९. **दस अच्छेरा (आश्चर्यकारी प्रसग)**— सामान्यतया परिपाटीसे भिन्न विशिष्ट सयोगमे विशिष्ट कार्य-घटनाये असख्य उत्सर्पिणी-अवसर्पिणी काल बाद घटित होती है । इस अवसर्पिणि कालमे ऐसे दस प्रसगोका जैन इतिहासज्ञोने आलेखन किया है— (१) तीर्थंकर (भ महावीरजी)का नीच कुलमे अवतरण (गर्भ सक्रमण) (२) प्रथम देशना निष्फल (३) केवलज्ञान पश्चात् गोशालाका उपसर्ग (४) सूर्य-चद्रका मूल रूपमे, मूल विमान सहित भगवतको वदनार्थ आना। (५) चमरेन्द्रका उत्पात (ये पॉच आश्चर्यकारी प्रसग भ महावीरके समयमे घटित हुए।) (६) तीर्थकर(श्री मल्लीनाथभ) का स्त्रीवेद सहित जन्म (७) श्री नेमिनाथ भ के समयमे भरतक्षेत्रका वासुदेव कृष्ण और धातकीखडके वासुदेवके शखनादोका मिलन-अपरककामे (८) श्री शीतलनाथ भ के समयमे युगलीकका व्यसनी बनकर नरकगमन और उनसे प्रवर्तित हरिवश (९) भ सुविधिनाथके पश्चात् असयतियोकी पूजाका प्रारम्भ (१०) पाचसौ धनुषकी अवगाहना (ऊँचाई) वाले एक समयमे (एकसाथ) १०८ का अष्टापद पर्वत पर अनशन करके मोक्ष गमन (श्री ऋषभदेव+ उनके ९९ पुत्र+ भरतके आठ पुत्र = १०८)

३०. **द्वादशांगी**— 'अग' अर्थात् अर्थ रूपसे तीर्थंकर भ.द्वारा प्ररूपित विस्तृत देशनाको गणधर भ द्वारा सूत्ररूपमे गुफित करना अथवा तीर्थंकर द्वारा प्रदत्त 'त्रिपदी'का विस्तार-बारह सूत्र अर्थात् द्वादश अगोका समूह वह द्वादशागी-यथा- आचाराग, सूत्रकृताग, स्थानाग, समवायांग, भगवती सूत्र (व्याख्या प्रज्ञप्ति) ज्ञाताधर्मकथा, उपासक दशा, अतकृत दशा अनुत्तरोपपातिक, प्रश्न व्याकरण, विपाकसूत्र, दृष्टिवादसूत्र—

३१. **धर्मध्यान**— शुभध्यान कहलाता है ।

३२. **धर्मास्तिकायादि चार**— धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय—ये चार अजीव द्रव्यकी सज्ञाये(नाम) है । जिनके विभिन्न गुण (स्वभाव) होते हैं यथा— धर्मास्तिकाय चलनेमे सहायक अधर्मास्तिकाय स्थिर रहनेमे सहायक, आकाशास्तिकाय अवकाश (स्थान) देता है और पुद्गलास्तिकायके सडन-पडन-विध्वसन्-पारिणामिक स्वरूपके कारण ससारकी विचित्रताये भासित होती हैं । (इनका विशेष स्वरूप 'नवतत्त्वादि' जैन ग्रन्थोसे ज्ञातव्य है)

३३. **नव लोकांतिक देव**— ये देव वैमानिक प्रकारके होते है, जिनके नव विमान पचम् (ब्रह्म देवलोक)के पार्श्वमे स्थित हैं । ये सभी देव एकावतारी (देव गतिमे से च्यवकर मनुष्य जन्म पाकर मोक्ष प्राप्त करनेवाले) होते है । श्री तीर्थकर भ के दीक्षा अवसरके एक वर्ष पूर्व ये देव स्वयके आचार अनुसार कृष्णराजिके मध्य श्रीतीर्थकर भ को तीर्थ प्रवर्तनके लिए (अर्थात् दीक्षा लेकर कैवल्य प्राप्त करके तीर्थ स्थापना हेतु) विनती करते हैं ।

३४. **निकाचित**— अर्थात् स्थिर । कर्म निकाचित करना अर्थात् कर्मकी आत्माके साथ ऐसी स्थिर स्थिति, जिसे भुगतनेके अतिरिक्त और कोई उपाय नही । जिसकी किसी भी सयोगके सहयोगसे आत्मासे मुक्ति नही ।

३५ **निर्जरा**— निर्जरा अर्थात् झर जाना—आत्मासे कर्मका विघटन होना

३६. **पंचतीर्थी प्रतिमा**— ऐसी प्रतिमा विशिष्ट पूजा-अनुष्ठानोमे उपयोगी होती है । इसमे मध्यमे मूलनायक स्वरूप एक भगवतकी प्रतिमा और उनकी दोनो पार्श्वोमे उपर पद्मासन युक्त और नीचे खडी (काउसग्ग मुद्रा) प्रतिमाये होती हैं । अत पाच भगवतकी एक ही पीठिका पर प्रतिमाये होनेसे पचतीर्थी कहलाती है ।

३७. **पंच परमेष्ठि**— परम इष्ट फल प्रदाता, वही परमेष्ठी—ये पाच हैं— अरिहत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु ।

३८. **पंच महाव्रत**— जैन साधु (सर्व विरतिधर)को ये व्रत पालन करनेका विधान श्री अरिहत भ द्वारा होता है । अन्य तीर्थंकरोके द्वारा चार व्रत और भ महावीर द्वारा पाच व्रतका आदेश हुआ है— सर्वथा प्राणातिपात विरमण, सर्वथा मृषावाद विरमण, सर्वथा अदत्तादान विरमण, सर्वथा मैथुन विरमण, सर्वथा परिग्रह विरमण ।

३९. **परिषह-उपसर्ग**— प्रतिदिन जीवन व्यवहारमे प्राकृतिक या अन्य जीवों द्वारा आनेवाले अवरोध या प्रतिकूलताये, कर्म निर्जरामे सहायक रूप मानकर या उस उद्देश्यसे स्वेच्छासे सहन करे वह परिषह और विशिष्ट आराधना अथवा अवसरो पर अन्य जीवो द्वारा होनेवाले अवरोध-प्रतिकूलताये उपसर्ग कहलाती है । परिषह बाईस हैं और उपसर्ग तीन प्रकारके होते हैं—देवकृत, मनुष्यकृत, तिर्यंचकृत—

४०. **पल्योपम**— विशिष्ट काल परिमाण—असख्यात वर्ष व्यतीत होने पर एक पल्योपम होता है ।

४१. **पापानुबंधी**— जिस कर्मके उदयकालमे जीव पापकर्मके बध-अनुबध करे वह पापानुबधी पाप(या पुण्य) कहा जाता है ।

४२ **पुण्यानुबधी**— जिस कर्मके उदयकालमे जीव पुण्यकर्मका बध-अनुबध करे उसे पुण्यानुबधी पुण्य या (पाप) कहते है ।

४३. **पूर्व वर्ष**— ३६५ दिन = १ वर्ष, ७०५६००० कोडवर्ष = १ पूर्व वर्ष (८४ लाख वर्ष x ८४ लाख वर्ष = १ पूर्वाग, ८४ लक्ष पूर्वाग = १ पूर्व)

४४. **प्रातिहार्य**— (देखिए अष्ट प्रातिहार्य)

४५. **बारह पर्षदा**— श्री अरिहत भगवत जिस-सभाके समक्ष (जो उनके निकट प्रथम प्राकारमे बैठते है) देशना देते हैं, वह पर्षदा कहलाती है, और उस देशनाको श्रवणकर्ता-श्रोता-बारह प्रकारके होते है— वैमानिक, ज्योतिष्क, भुवनपति, व्यतर—ये चार प्रकारके देव, उन्हीकी चार प्रकारकी देवियॉ और साधु-साध्वी-श्रावक-श्राविका—चार प्रकारके मनुष्य । (तिर्यंच भी देशना श्रवण हेतु आते है, लेकिन उनका स्थान पर्षदामे नही, द्वितीय प्राकारमें होता है । पर्षदा प्रथम प्राकारमे ही बैठती है ।)

४६. **बीस स्थानक**— इस तपके तपस्वी उत्कृष्ट भावाराधना द्वारा तीर्थंकर नामकर्म निकाचित कर सकते हैं, जिनके नाम और गुण हैं— अरिहत-१२, सिद्ध-८/३१, प्रवचन-२७, आचार्य-३६, स्थविर-१०, उपाध्याय-२५, साधुपद-२७, ज्ञानपद-५१, दर्शन-६७, विनय-५२, चारित्र-७०, ब्रह्मचर्य-१८, क्रिया-२५, तप-१२, गौतम-११, जिनपद-२०, सयम-१७, अभिनवज्ञान-श्रुत-२०, तीर्थपद-३८ (भ महावीरजीने ४०० मासक्षमण द्वारा इसकी आराधना की थी)

४७. **भव्य-अभव्य जीव**— जो निगोदकी अव्यवहार राशिसे निकलकर व्यवहार राशिमें आते है, यथावसर धर्म पुरुषार्थ करके, सपूर्ण कर्म निर्जरा होने पर मोक्ष प्राप्त करते हैं उसे भव्यजीव कहते हैं । जिन्हे अवसर मिलने पर भी मोक्ष पुरुषार्थका मन ही नही होता है; उसे अभव्य जीव कहते हैं ।

४८. **मति-श्रुत-अवधि**— ज्ञानके पाच भेदमेसे ये प्रथम तीन भेद है— मति और श्रुत परोक्ष (किसी साधन द्वारा और इन्द्रिय एव म. . सहयोगसे प्राप्त होनेवाला) ज्ञान है और अवधि प्रत्यक्ष ज्ञान है-जो आत्माको स्वय होता है ।

४९. **मेतार्य मुनि**— गौचरी (भिक्षा)के लिए गए मेतार्य मुनिने-क्रौंच पक्षीकी रक्षाके लिए स्वर्णकारकी पृच्छा पर मौन धारण किया और आमरणात उपसर्ग समभावसे सहते हुए केवलज्ञान उपलब्ध करके मोक्ष प्राप्ति की ।

५०. **मोक्ष**— सर्व कर्मोंका आत्मासे विघटन अर्थात् जीवकी सर्व कर्मोंसे मुक्ति जिसके बाद आत्मा सिद्धशिला पर अनतकालके लिए, शाश्वत भावसे स्थिर होती है । तत्पश्चात् ससारमे आत्माका पुनरागमन नही होता है ।

५१ **मौन एकादशी**— मृगशिर शुक्ल एकादशीका दिन । जैन पर्वोमे उत्तम आराधनाका यह पर्व है । इस दिन मनुष्य क्षेत्रके (भरत-ऐरावतकेदस क्षेत्रके) ९० जिनेश्वरोके १५० कल्याणकोकी मौन पूर्वक-पौषध-व्रत सहित आराधना की जाती है ।

५२ **युगलिक प्रथा**— जिसमे मनुष्य या तिर्यंच-सभी नर-मादाके युगल रूपमे एक साथ जन्म लेते हैं और एक साथ ही मरते हैं । उनकी जीवन व्यवहारकी प्रत्येक आवश्यकता देवाधिष्ठित कल्पवृक्ष पूर्ण करते हैं । उनकी आयु और अवगाहना अत्यत दीर्घ होते हैं । वे भद्रिक परिणामी होते हैं अत मर कर देवलोकमे ही जाते हैं ।

५३. **योगोद्वहन**— जैन धर्मके शास्त्रोके अध्ययनकी योग्यता प्राप्त करने हेतु साधु या साध्वी द्वारा तदतद् शास्त्र या सूत्रानुसार आचरणीय विशिष्ट तप सहित अनुष्ठान-विधि जो गीतार्थ या पदवीधर साधुकी निश्रामे होता है ।

५४. **रत्नप्रभा**— जैन भूगोलानुसार अधोलोकमे सात नरक हैं जिनमे प्रथम नरक रत्नप्रभा है । उसकी जमीन रत्न जैसे चमकीले पत्थरोकी बनी हुई होनेसे उसे रत्नप्रभा पृथ्वी कहते हैं ।

५५. **वाणीके पैंतीस गुण**—तीर्थंकर भगवत केवलज्ञान पश्चात् देशना फरमाते है उस वाणीमे पैंतीसगुण होते हैं- यथा- सुसस्कृत, उदात्त, अग्राम्यत्वम्, गभीर, प्रतिनाद विधायिता, दाक्षिण्यता युक्त, उपनीत रागत्वम्, महार्थता, पूर्वापर विरोध रहित, शिष्ट, निराशसत्व निराकृत दन्योत्तरत्वम्, हृदयगम्, परस्पर पद-वाक्यादिकी सापेक्षता युक्त, देशकालोचित, तत्त्वनिष्ठ, असम्बद्ध या अतिविस्तार रहित, आत्मोत्कर्ष या परनिंदा वर्जित, आभिजात्य, अति स्निग्ध-मधुर, प्रशस्य, मर्मवेधी, उदार, धर्मार्थ प्रतिबद्ध, कारक-काल-लिंगादिके विपर्यय रहित, विभ्रमादि वियुक्त, जिज्ञासाजनक, अद्भूत, अति विलम्ब रहित, विभिन्न विषयोका निरूपण करनेवाली, वचनान्तरकी अपेक्षासे विशेषता युक्त, सत्त्व प्रधान, वर्ण-पद-वाक्य सयुक्त, अव्यवच्छिन्न प्रवाह युक्त (विविक्षार्थकी सिद्धि करवानेवाली), खेद या थकावट रहित

५६. **विकलेन्द्रिय**— दोइन्द्रिय, तेइन्द्रिय, चौरिन्द्रिय—अर्थात सपूर्ण पचेन्द्रिय रहित जीव ।

५७. **वैमानिक आदि चार**— स्वर्गमे जो विमानमे रहे वे देव वैमानिक, तिच्छालोकके मेरु पर्वतके चारो ओर प्रदक्षिणा करनेवाले सूर्य-चद्रादि ज्योतिष्क, भुवनपति और व्यतर—ये चार प्रकारके देव होते है ।

५८. **शक्रस्तव**— तीर्थंकर भगवतोके कल्याणक अवसरमे सौधर्मेन्द्र द्वारा की जाती उनकी स्तुति-पाठ ।

५९. **शुक्लध्यान**— ध्यान चतुष्कका ये अतिम ध्यान है जिसके चार चरण है । केवल ज्ञानीको प्रथम दो चरणवाला शुक्ल ध्यान होता है और मोक्षप्राप्तिके चरम अतर्मुहूर्तमे इस ध्यानके तृतीय और चतुर्थपादमे आत्माका रमण होता है ।

६०. **समवसरण**— श्री तीर्थंकर भगवतके केवल ज्ञान पश्चात् चारो प्रकारके देवो द्वारा भगवतके लिए देशनाभूमि तैयार की जाती है जिसमे प्रथम रजतका, द्वितीय स्वर्णका, तृतीय स्वर्ण रत्नोका-तीन प्राकार देवकृत होते है. उस पर देव रत्नमय सिंहासन और पादपीठकी रचना करते है । जिसके चारो ओर ऊपर चढनेके लिए बीस-बीस हजार सीढीयॉ होती है। जो प्राय एक योजनके विस्तारवृत्त या चौकुन होता है ।

६१. **सम्यक्त्व**— मोक्ष महलका प्रथम सोपान—केवलज्ञान प्राप्ति हेतु सम्यक्त्व प्राप्तिको नीव माना गया है । सम्यक्त्वका प्रकटीकरण अर्थात् देव-गुरु-धर्म-तत्त्वत्रय पर अखड आस्था ।

६२. **सर्वज्ञता**— विश्वके सर्व द्रव्य पर्यायोको समकाले सपूर्ण रूपसे जानना (केवली भगवतका गुण है)

६३. **सर्वार्थ सिद्ध**—सर्वोत्कृष्ट भौतिक सुख-समृद्धि भोगनेका उत्तमोत्तम स्थान-अनुत्तर विमान—जहॉ देवोकी आयु ३३ सागरोपम-प्रत्येक ३३ पक्षके पश्चात सास ले, तैंतीस हजार साल पश्चात् आहारकी इच्छा हो । जहॉ केवल ज्ञान-ध्यानादि शुभप्रवृत्ति ही हो । ये सभी देव एकावतारी होते है ।

६४. **सागरोपम**— दस कोडाकोडी पल्योपम = १ सागरोपम/(पल्योपमका स्वरूप पूर्वांकित है)

६५. **सिद्धिगति**— इसे पचमगति भी कहते है । जीव आठो कर्मोसे सपूर्ण मुक्त हो जानेके बाद ऋजु गतिसे (सीधी गतिसे) कमानसे छूटे तीर सदृश एक समयमे सिद्धशिला प्रति गमन करता है उस गतिको सिद्धिगति कहते है । मोक्ष प्राप्त करानेवाली गति सिद्धिगति है ।

६६. **सूक्ष्म-बादर**— सूक्ष्म नामकर्मके उदयवाले, चौदह राजलोक व्यापी, केवलज्ञान रूपी चक्षुको ही गोचर या दृश्यमान, लेकिन अनत राशि (सख्या)मे इकट्ठे होने पर भी चर्मचक्षुके लिए अदृश्य-अगोचर जीव—जिनका छेदन-भेदन-ज्वलन न हो सके वे सूक्ष्म जीव कहलाते हैं । बादर नामकर्मके उदयवाले चौदह राजलोक व्यापी, चर्मचक्षुको भी गोचर-दृश्यमान, प्रत्येक या साधारण रूपमे छेदन-भेदन-ज्वलनके गुण—स्वभाववाले एकेन्द्रिय से पचेन्द्रिय पर्यंत जीवोको बादर कहते है ।

६७. **स्कंध**— असख्य परमाणुसे बने किसी एक पदार्थका सपूर्ण स्वरूप स्कध कहलाता है । उदा एक पुस्तक-एक स्कध स्वरूप है ।

६८ **देश**— स्कधका कोई एक खड-टूकडा विभाग—जो स्कध से सयुक्त है उसे देश कहा जाता है । उदा पुस्तकका एक पन्ना, जो पुस्तकसे सलग्न है । वही पन्ना अलग हो जाने पर स्वतत्र स्कध रूपमे व्यवहृत होता है ।

६९ **प्रदेश**— स्कध या देशसे युक्त पदार्थका सूक्ष्मातिसूक्ष्म, सर्वज्ञके ज्ञानबलसे अविभाज्य अश प्रदेश कहलाता है । उदा पुस्तक या पन्नाका एक रज-प्रमाण सूक्ष्माश

७०. **परमाणु**— पदार्थसे (स्कध या देश से) सयुक्त, प्रदेश कहलानेवाला निर्विभाज्य सूक्ष्माश जब पदार्थसे विमुक्त होता है, तब वही सूक्ष्माश परमाणु सज्ञासे पहचाना जाता है ।

७१. **स्यात्**— स्याद्वादका प्राण 'स्यात्' शब्द है, जिसका अर्थ है कथचित, आशिक